International Journal of Applied Research 2015; 1(2): 33-34

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2015; 1(2): 33-34
www.allresearchjournal.com
Received: 16-08-2014
Accepted: 12-10-2014

डॉ0 नन्दिनी समाधिया
(संस्कृत) 1054 खजूर बाग नई बस्ती झाँसी।

Correspondence:
डॉ0 नन्दिनी समाधिया
(संस्कृत) 1054 खजूर बाग नई बस्ती झाँसी।

मनुस्मृति में ब्रहाचर तथा ब्रहालोक का महत्व

डॉ0 नन्दिनी समाधिया

(क) ब्रह्मचर तथा ब्रह्मलोक का महत्व :–

अविनाशी वह ब्रह्मा सम्पूर्ण चराचर संसार को जाग्रत और स्वप्न के द्वारा निरन्तर निर्मित करता है और नष्ट करता है। [1] यहाँ यह शंका उठती है कि यहाँ तो इस शास्त्र को ब्रह्मा द्वारा निर्मित कहा है कि फिर इसको मनुकृत क्यों कहा जाता है ? इस विषय में मेधातिथि का समाधान है कि शास्त्र शब्द से यहाँ विधि प्रतिषेध रूप शास्त्र के अर्थ का ग्रहण करना चाहिए। उस अर्थ को ब्रह्मा ने मनु को ग्रहण कराया था और मनु ने उस अर्थ के प्रतिपादक ग्रन्थ की रचना की। कुछ लोगों का कहना है कि जिस प्रकार वेद के अपौरुषेय होने पर भी काठक आदि संहिताओं का व्यपदेश होता है। उसी प्रकार ब्रह्मरचित होने पर भी सर्वप्रथम मनु के द्वारा मरीचि आदि के लिए प्रकाशित किये जाने के कारण इसे मनुकृ त माना जाता है। किन्तु कुल्लूकभट्ट का कहना है कि वस्तुतः ब्रह्मा ने एक लाख श्लोक प्रमाण धर्मशास्त्र बनाकर मनु को पढ़ाया था और मनु ने उसका संक्षेपीकरण करके शिष्यों को प्रतिपादित किया। अतः ब्रह्मकृत कहने पर भी मनुविरचित मानने में कोई विरोध नहीं है। नारद ने भी इस शास्त्र के एक लाख श्लोक प्रमाण होने का समर्थन किया है–''शतसाहस्रोऽयं ग्रन्थः।। [2]'

अब यह भृगु इस सम्पूर्ण शास्त्र को तुमको सुनावेंगे। क्योंकि इस मुनि ने यह सब मुझसे अध्ययन किया है। [3] इसके बाद उन मनु जी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर महर्षि भृगु ने प्रसन्न होकर उन सभी ऋषियों से कहा –

स्वयंभू (ब्रह्मपुत्र)मनु के वंश में छः अन्य मनु हुए। महान् पराक्रमी उन महात्माओं ने अपनी–अपनी प्रजा की सृष्टि की। स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुप और महान् तेजस्वी वैवस्वत (ये छः मनुओं के नाम हैं)। मनु से लेकर अत्यन्त पराक्रमी सातों मनुओं ने अपने मन्वन्तरकाल में चराचर सम्पूर्ण संसार की रचना करके रक्षा की। अठारह निमेष की एक काष्ठा, तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त और उतने ही मुहूर्त का एक अहोरात्र होता है।

अब यहाँ से मन्वन्तर सृष्टि और प्रलय आदि के काल के ज्ञान के लिए काल का प्रमाण बताया गया है। [3]

सूर्य मनुष्य और देवताओं में दिन–रात का विभाजन करता है। रात्रि प्राणियों के सोने के लिए है और दिन कार्यों के करने के लिए है। मनुष्यों का एक माह पितरों के लिए एक अहोरात्र (दिन रात) होता है। दोनों पक्षों में से एक भाग कृष्णपक्ष कार्य करके के लिए दिन और शुक्लपक्ष सोने के लिए रात्रि होती है। एकवर्ष देवताओं का अहोरात्र होता है। वर्ष के दो हिस्सों में ऐ एक भाग उत्तरायण दिन तथा दक्षिणायण रात होती है। ब्रह्मा जी के अहोरात्र का और युगों का जो प्रमाण है वह क्रम से एक–एक करके समझो। यहाँ पर पितरों और देवताओं का कालप्रमाण वर्णित करके ब्रह्मा जी का कालप्रमाण पृथक् वर्णित किया जा रहा है वह उनके ज्ञान का पुण्यफल जानने के लिए है। क्योंकि उनके ज्ञान से पुण्य होता है। चार हजार वर्ष का एक कृत (सत) युग होता है। उतने ही सैकड़े (अर्थात् 400 वर्ष) की एक संध्या होती है और उसी प्रकार का (अर्थात् 400 वर्ष का) ही एक संध्यांश होता है। [3]

'तत्प्रमाणैः शतैः संध्या पूर्वा तत्राभिधीयते।
सन्ध्यांशकश्च तत्तुल्यो युगस्यानन्तरो हि यः।।
संध्यासंध्यांशयोरन्तर्यः कालो मुनिसत्तम।
युगाख्यः स तु विज्ञेज्ञः कृतत्रेतादिसंज्ञकः।।'

सतयुग का प्रमाण 4000 वर्ष, संख्या का प्रमाण 400 वर्ष और संध्यांश का प्रमाण भी 400 वर्ष ऊपर बताया जा चुका है। इस प्रमाण में से क्रमशः एक–एक हजार और एक–एक सौ संख्या कम करने पर अन्य युगों का प्रमाण निकल आता है। सतयुग के बाद त्रेतायुग का प्रमाण 3000 वर्ष, संध्या 300 वर्ष और संध्यांश भी 300 वर्ष होता है। द्वापर युग के प्रमाण 2000 वर्ष संध्या और संध्यांश 200 वर्ष प्रमाण होता है। कलियुग का प्रमाण 1000 वर्ष और संख्या तथा संध्यांश 100 वर्ष के होते हैं। [1]

चारों युगों की वर्ष संख्या इस प्रकार समझना चाहिए –

सतयुग– 4000 वर्ष+400 वर्ष संध्या+400 वर्ष संध्यांश = 4800
त्रेतायेग– 3000वर्ष+300 वर्ष संध्या+300 वर्ष संध्यांश = 3600
द्वापरयुग– 2000वर्ष+200 वर्ष संध्या+200 वर्ष संध्यांश = 2400
कलियुग– 1000वर्ष+100 वर्ष संध्या+100 वर्ष संध्यांश = 1200

इस प्रकार चारों युगों का कुल परिमाण 12000 वर्ष है। [1]

देवताओं के एक हजार युगों का ब्रह्मा का एक दिन और उतनी ही रात्रि समझना चाहिऐ। अहोरात्र के जानने वाले विद्वान् एक हजार युग का ब्रह्मा एक पवित्र दिन और उतनी ही रात्रि बतलाते हैं। प्रकृत श्लोक में ब्राह्म अहोरात्र के ज्ञाताओं की स्तुति अभिव्यक्त होती है। इससे ब्राह्म अहोरात्र को जानना चाहिए। यह विधि परिकल्पित होती है। पुण्य विशेषण के कारण ब्राह्म अहोरात्र के ज्ञान की पुण्यहेतुता का भी पता चलता है।

'मनः सृजति का अभिप्राय यहाँ पर 'मन की सृष्टि करता है' ऐसा नहीं करना चाहिए। क्योंकि उसका मन नष्ट नहीं होता है। महाप्रलय के बाद ब्रह्मा का मन पुनः उत्पन्न हो जाता है। 'मनः सृजति' का अर्थ यहाँ 'मानसी सृष्टि करता है' करना चाहिए। कुल्लूकभट्ट ने लिखा है–'मनः सृजति भूर्लोकादित्रयसृष्टये नियुङ्क्ते न तु जनयति।' पुराण का भी ऐसा ही वचन है–'मन सिसृक्षया युक्त' सर्गाय निदधे पुनः। इस अर्थ के अलावा 'मनः' का अर्थ महत् तत्त्व करके भी समाधान के निमित्त महत् आदि तत्त्वों को बताता है। [1]

सृष्टि की इच्छा से प्रेरित किया गया मन सृष्टि करता है। उससे आकाश उत्पन्न होता है। शब्द उसका गुण है। द्रष्टव्य–तर्कसंग्रह 'शब्दगुणकमाकाशम्।' विकास को प्राप्त हुए आकाश से सभी गन्धों को वहन करने वाला पवित्र बलवान् वायु उत्पन्न होता है। यह स्पर्श गुण वाला कहा गया है। द्रष्टव्य तर्कसंग्रह 'रूपरहितस्पर्शवान् वायुः।' विकास को प्राप्त हुए वायु से अन्धकार को दूर करने वाला प्रकाशमान् तेज उत्पन्न होता है। उसका गुण रूप कहा जाता है। विकास को प्राप्त हुए तेज से जल पैदा हुए। वे रस गुण वाले कहे गये हैं। जलों से गन्ध गुण वाली पृथिवी उत्पन्न हुई। यइ प्रथम सृष्टि है। जो पहले वारह हजार वर्ष का देवताओं का युग कहा गया है उसके इकहत्तर गुणों वर्षोः का एक मन्वन्तर होता है। (मन्वन्तर उसे कहते जिसमें एक मनु का सृष्टि का अधिकार रहता है।) मन्वन्तर, सर्ग और संहार ये असंख्य है। ईश्वर खेल की तरह इन्हें बार–बार करता है। यद्यपि मन्वन्तरों की संख्या 14 ही पुराणों में उल्लिखित है तथापि बार–बार आवृत्ति से मन्वन्तर सर्ग और संहार असंख्य हो जाते हैं। यह सब ब्रह्मा क्रीड़ा मात्र में कर देता है। प्रयोजन न होने पर भी प्रजापति ब्रह्मा लीलास्वभाववान् होने से सृष्टि आदि करता रहता है। जैसा कि शारीरकमसूत्र में भी कहा गया है–''लोकवत्तृ लीलाकैवल्यम्।'' [1]

आगम में धर्म की वृष (बैल) के रूप में कल्पना की गई है–'वृषो हि भगवान्धर्मः।' अतएव उसके चार चरणों का वर्णन है। अथवा स्वयं मनु ने ही तप, ज्ञान, यज्ञ और दान इन चार को धर्म के पादचतुष्टय के रूप में वर्णित किया है। [1]

मेधातिथि और गोविन्दराज ने 'आगमात्' का अर्थ 'वेपात्' किया है। यज्ञ आदि धर्म क्रम से प्रत्येक युग में एक–एक पाद से हीन हो जाता है। धन–विद्यादि से अर्जित धर्म भी चारों असत्य और कपट से एक–एक चरण से हीन हो जाता है। चोरी असत्य और कपट का त्रेता, द्वापर और कलियुग के साथ क्रमानुसार अन्वय नहीं करना चाहिए। क्योंकि चोरी और सभी युगों में देखी जाती है। [1] कृतयुग में मनुष्य की आयु 400 वर्ष, त्रेतायुग में 300 वर्ष, द्वापर में 200 वर्ष तथा कलियुग में 100 वर्ष होती है। 'शतायुर्वै पुरुषः' आगम का यह वचन कलियुग परक है अथवा यहाँ शतसंख्या बहुत्ववाचक है। [1] यद्यपि तपस्या आदि सभी युगों में अनुष्ठेय हैं, तथापि कृतयुग में तपस्या अधिक फल वाली, त्रेता में ज्ञान अधिक फल वाला, द्वापर में यज्ञ तथा कलियुग में दान अधिक फल वाला कहा गया है। [1] इस सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षा के लिए उस महान् तेजस्वी ने मुख, बाहु, जंघा और पैरों से उत्पन्न होने वाले मनुष्यों (क्रमशः ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों) के अलग–अलग कार्यों की रचना की। विद्या पढ़ाना, पढ़ना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना ब्राह्मणों का कार्य निश्चित किया। प्रजाओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना अध्ययन करना, विषयों में आसक्ति न रखना संक्षेप में क्षत्रिय का कार्य है। पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, पढना, व्यापार करना, ब्याज का कार्य करना और खेती करना ये वैश्य के कार्य हैं। इन सभी वर्णों की ईर्ष्याहीन होकर सेवा करना यह एक ही कार्य शूद्र का ईश्वर ने बतलाया है। नाभि ने ऊपर पुरुष अत्यन्त शुद्ध कहा गया है। ब्रह्मा ने मुख को उससे भी पवित्र कहा है। उत्तमांग (मुख) से पैदा होने के कारण, ज्येष्ठ (क्षत्रियादि से पूर्व उत्पन्न) होने के कारण और वेद को धारण करने के कारण इस सम्पूर्ण सृष्टि का ब्राह्मण धर्मपूर्वक स्वामी है। अन्यत्र भी ब्राह्मण की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है–'संस्कारस्य विशेषात्तु वर्णानां ब्राह्मण प्रभुः'' अर्थात् संस्कार की विशेषताओं के कारण ब्राह्मण सभी वर्णों का स्वामी है। ब्रह्मा जी ने तपस्या करके हव्य और कव्य पहुँचाने के लिए तथा इस सम्पूर्ण जगत् की रक्षा के लिए सर्वप्रथम अपने मुख से उनको बनाया। ब्राह्मण देवताओं को हव्य और पितरों को कव्य वहन करता है। [4]

जिसके मुख से देवता हव्यों को और पितर कव्यों को खाते हैं, उससे अधिक श्रेष्ठ प्राणी कौन हो सकता है। (स्थावर जंगम) भूतों में प्राणी श्रेष्ठ हैं, प्राणियों में बुद्धिजीवी श्रेष्ठ हैं, बुद्धि में मनुष्य श्रेष्ठ हैं और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ कहे गये हैं। ब्राह्मणों में विद्वान् विद्वानों में (शास्त्रोक्त) कार्य में रखने वाले, (शास्त्रोक्त) कार्य में बुद्धि रखने वालों में करने वाले और करने वालों में ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मण का जन्म होना ही धर्म की शाश्वत (अविनाशी) मूर्ति है। क्योंकि वह धर्म के लिए ही उत्पन्न हुआ है। वह मोक्षप्राप्ति के लिए (ब्रह्मज्ञान के लिए) समर्थ होता है। ब्राह्मण उत्पन्न होते ही पृथिवी पर श्रेष्ठ होता है। वह सभी प्राणियों के धर्म रूपी खजाने की रक्षा करने में समर्थ है। पृथिवी के ऊपर जो कुछ भी है वह सब ब्राह्मणों का धन है। क्योंकि श्रेष्ठता के कारण वह इसका अधिकारी होता है। ब्राह्मण (दूसरे का) भोजन करता है, वस्त्र पहनता है अथवा देता है तो वह उसका अपना ही है। क्योंकि ब्राह्मण की दयालुता से ही दूसरे लोग खाते हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि यदि ब्राह्मण दूसरे का भोजन करता है, पहनता है अथवा दूसरे का लेकर दान का देता है तो वह ब्राह्मण का अपना ही धन है। क्योंकि उसी की कृपा से अन्य खाते–पीते हैं। इसमें ब्राह्मण का प्राशस्त्य वर्णित है। [3]

1 मनुस्मृति श्लोक सं. 87–94
1 वही. श्लोक सं. 95–101